bdkbZ 10 jkT; vkSj ukxfjd lekt

bdkbZ dh :ijs[kk

10.1 प्रस्तावना

10.2 राज्य और नागरिक समाज : अर्थ और लक्षण

10.2.1 राज्य का अर्थ

10.2.2 नागरिक समाज का अर्थ

10.2.3 राज्य और नागरिक समाज के लक्षण

10.3 राज्य की अवधारणा : एक पर्यवलोकन

10.3.1 पूर्व–आधुनिक परम्परा

10.3.2 उदारवादी–व्यक्तिवादी परम्परा

10.3.3 मार्क्सियन परम्परा

10.4 सभ्य समाज की अवधारणा : एक पर्यवलोकन

10.4.1 पूर्व–आधुनिक परम्परा

10.4.2 उदारवादी–व्यक्तिवादी परम्परा

10.4.3 हेगैलियन, मार्क्सियन और ग्राम्सियन परम्पराएँ

10.5 राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध

10.5.1 राज्य और समाज : संघटनकारी संबंध

10.5.2 राज्य, नागरिक समाज और लोकतंत्र

10.6 सारांश

10.7 अभ्यास

10-1 izLrkouk

राज्य की अवधारणा राजनीति–विज्ञान में एक मुख्य स्थान रखती है। 'राज्य' शब्द का उल्लेख किए बिना राजनीति–सिद्धांत पर कोई चर्चा पूरी नहीं होती। राज्य, वस्तुतः, मानव जीवन का हर पहलू छूता है, और यही कारण है, बिल्कुल सही रूप से, कि इसने प्लेटो के समय से ही सभी राजनीति–तत्त्वज्ञों का ध्यान आकृष्ट किया है। सार्वजनिक जीवन को व्यवस्थित करते एक प्रशासनिक तंत्र के रूप में राज्य को समझना इसके एक पहलू को समझना है। महत्त्वपूर्ण तो वैसे यह पहलू है, पर यह ऐसा एकमात्र पहलू नहीं है, जो स्पष्ट करे कि यह क्या है। राज्य वहाँ है, जहाँ यह कार्यरूप में व्यवहृत है। अपने अन्य संबंधित संकेतार्थों के साथ इसका वास्तविक अर्थ अधिक स्पष्ट रूप से तब सामने आता है, जब यह अपने कार्यक्षेत्र के प्रभावक्षेत्र के संबंध में समझा जाता है, जो कि वही है जो समाज है।

राज्य क्या है? समाज अथवा नागरिक समाज क्या है? इन दोनों के क्या संबंध हैं और दोनों एक–दूसरे के संबंध में कैसे स्थित हैं? नागरिक समाज के विषय में क्या विशेष बात है जो राज्य को एक भिन्न सम्पृक्तार्थ प्रदान करती है? ये प्रश्न राजनीति–सिद्धांत के प्रसंग में महत्त्वपूर्ण रहे हैं, और वस्तुतः हैं भी तथा इन प्रश्नों के उत्तर बहुत से राजनीति–सिद्धांतियों द्वारा दिए गए हैं।

इन दो शब्दों, राज्य और नागरिक समाज, से संबंधित विषयों पर एक परिचर्चा हमें उनके अर्थों, संकेतार्थों व उन सापेक्ष परिप्रेक्ष्यों को समझने में मदद करेगी, जिनमें ये दो संकल्पनाएँ एक–दूसरे का पालन करती हैं।

10-2 jkT; vkj ukxfjd lekt % vFk vkj y{k.k

समाज को नागरिक समाज, नागरिक समाज को राजनीतिक समाज, राजनीतिक समाज को राज्य बतलाना बड़ी आम बात है। हरेक को एक दूसरा समझने का मतलब है कि हम इनमें से किसी को नहीं समझते। जबकि 'समाज' संकल्पना एक व्यापक शब्द है, 'नागरिक समाज' शब्द इस प्रकार के समाज को इंगित करता है, जो एक समय–विशेष के प्रति निर्दिष्ट है और एक परिस्थिति–विशेष में स्थित है। 'समाज', आम भाषा में, 'सामाजिक संबंधों' की समग्रता, अभिज्ञ अथवा अनभिज्ञ, इरादतन अथवा ग़ैर–इरादतन, की ओर इशारा करता है। 'नागरिक समाज', दूसरी ओर, स्वयं को 'जनता' से संबंधित मामलों से संबद्ध रखता है। यह बात 'नागरिक समाज' शब्द को 'राजनीतिक समाज' की संकल्पना के नज़दीक लाती है। वस्तुतः, दोनों ही शब्द–पद पहले ही एक ऐसा समाज मानकर चलते हैं, जहाँ शिष्टाचार या नागरिकता उनका चारित्रिक लक्षण है, परन्तु 'नागरिक समाज' उन क्षेत्रों तक फैला है जो 'राजनीतिक समाज' की पहुँच से *बहुत* दूर हैं। परिवार की संस्था, उदाहरण के लिए, 'नागरिक समाज' के अन्तर्गत आने वाला क्षेत्र है, परन्तु यह ऐसा कार्यक्षेत्र है जहाँ 'राजनीतिक समाज' दूर ही रहे तो अच्छा। 'राजनीतिक समाज' में प्रत्यक्षतः अथवा परोक्षतः 'राजनीतिक' से संबंधित तमाम गतिविधियाँ आती हैं, परन्तु यह शब्द–पद 'राज्य' शब्द की अपेक्षा *अधिक व्यापक* रहता है जब परवर्ती को महज शासन की विषय–वस्तु के रूप में लिया जाता है।

यह वास्तव में, आवश्यक है कि हम इन शब्दों के अर्थों को स्पष्ट रूप से समझें, यदि हम उनके बीच संबंध को समझने का इरादा रखते हैं, खासकर राज्य व नागरिक समाज के बीच।

10-2-1 jkT; dk vFk

राज्य (State), एक स्टैटो (*Stato*) शब्द के रूप में मैक्यावली (1469–1527) के लेखों में सोलहवीं सदी के शुरुआती हिस्से में इटली में नज़र आया। एक निकाय विज्ञ के भाव में राज्य का अर्थ सोलहवीं सदी के बाद के हिस्से में इंग्लैण्ड व फ्रांस में सर्वमान्य हो गया। सत्रहवीं सदी के दौरान स्टैट्स्कुन्स्ट (*staatskunst*) शब्द रैजिऍन दी स्टैटो (*ragione di stato*) का जर्मन पर्यायवाची बन गया और कुछ बाद में, स्टैट्रेक्ट शब्द ने जस पब्लिकन (*jus publican*) का अर्थ ले लिया (देखें सैबाइन, ''स्टेट'', *दि एन्साइक्लॅपीडिया ऑफ द सोशल साइन्सिज़,* खण्ड XIV)। इस प्रकार हुआ राज्य, यानी 'स्टेट' शब्द का प्रचलन।

राज्य में, शुरू से ही, एक प्रदेश और एक राष्ट्र का उल्लेख शामिल रहा है, परन्तु यह अकेले ही किसी राज्य का निर्माण नहीं करता। यह बहुत्व–अभाव, कानूनी व राजनीतिक प्राधिकार की अभिन्नता, समाज में आदमी के विशिष्ट बाह्य संबंधों पर नियंत्रण रखने, समाज के भीतर ही अस्तित्व रखने की ओर भी इशारा करता है। यह वो है जो यह करता है, यानी सार्वजनिक शान्ति व नियंत्रण की एक व्यवस्था बनाता है, और इस काम के लिए, बल–प्रयोग व दमन–प्रयोग की कानूनी शक्ति से न्यायगत होता है।

एक राज्य, इस प्रकार, अपनी विस्तृत व्यवस्था में स्थापित होता है। यह अपनी उन संस्थाओं में स्थापित होता है जो कानून बनाती हैं और जो उन्हें लागू करती हैं, यानी, विधायिका, कार्यपालिका व न्यायपालिका जैसी संस्थाओं में। यह उन नौकरशाह संस्थाओं में स्थापित होता है जो सरकार की प्रत्येक कार्यकारी शाखा से जुड़ी होती हैं। यह उन संस्थाओं में स्थापित होता है, जिनको उसके मनोरथ को चुनौती मिलने पर कार्यशील होने का आह्वान किया जाता है, यथा, सेना व पुलिस। राज्य इन संस्थाओं का कुलयोग है। रैल्फ मिलिबैंड (*द स्टेट इन कैपिटलिस्ट सोसाइटि*) लिखते हैं, ''यही वो संस्थाएँ हैं – सरकार, प्रशाासन, सेना व पुलिस, न्यायिक शाखा, उप–केन्द्रीय सरकार तथा संसदीय सभाएँ – जो राज्य का निर्माण करती हैं...''। इन संस्थाओं में राज्य सत्ता निहित होती है; इन संस्थाओं के ही माध्यम से राज्य के कानून निकलते हैं, और उन्हीं से शारीरिक बल–प्रयोग का कानूनी अधिकार निकलकर आता है।

शासन के रूप में राज्य एक व्यवस्था है, जो भी उससे जुड़ा है उसको राजनीतिक व्यवस्था अथवा राजनीतिक समाज कहा जा सकता है। इसमें एक ओर शामिल हैं संस्थाएँ, जैसे कि राजनीतिक दल, दबाव समूह, प्रतिपक्ष, आदि, और दूसरी ओर, वृहद्–स्तरीय उद्योग–गृह, धार्मिक व जातीय संस्थाएँ, श्रमिक संघ, आदि। राज्य–व्यवस्था से बाहर अस्तित्व रखने वाली ये संस्थाएँ राज्य की कार्यवाही को प्रभावित करने का प्रयास करती हैं, कहीं उस पर हावी होकर भी, और कहीं उसके साथ सहयोग करके। स्कॉक्पॉल (*स्टेट्स एण्ड सोशल रैवॅलूशन : ए कॅम्पैरॅटिव ॲनैलिसिस ऑफ फ्रैन्स, रॅशा एण्ड चाइनॅ*) वह बात संक्षेप में कहते हैं, जिसको नीरा चन्धोक (*स्टेट एण्ड सिविल सोसाइटि*) राज्य का राज्यनियंत्रणवादी परिप्रेक्ष्य कहती हैं, ''राज्य को ठीक से समझने पर ... निस्संदेह एक कार्यकारी प्राधिकरण के नेतृत्व में, और न्यूनाधिक भलीभाँति समन्वय में, प्रशासनिक, पुलिस–एकत्रण व सैन्य संगठनों का सेट है। कोई भी राज्य प्रथमतः एवं आधारभूत रूप से समाज से ही संसाधन निष्कर्षित करता है तथा इनको दमनकारी व प्रशासनिक संगठनों को जन्म देने व समर्थन देने हेतु क्रियाशील करता है... इसके अतिरिक्त, दमनकारी व प्रशासनिक संगठन कुल मिलाकर राजनीतिक व्यवस्थाओं के अंगमात्र ही हैं। इन व्यवस्थाओं में ऐसी संस्थाएँ हो सकती हैं जिनके माध्यम से राज्य नीति–निर्माण में सामाजिक हितों का प्रतिनिधित्व किया जाता है, साथ ही ऐसी संस्थाएँ भी हो सकती हैं जिनके माध यम से नीति–कार्यान्वयन में भागीदारी हेतु ग़ैर–राज्य कर्त्ताओं को संघटित किया जाता है। तिस पर भी, प्रशासनिक व दमनकारी संगठन राज्य सत्ता का आधार होते हैं।''

राज्य को अर्थ प्रदान करता दूसरा सूत्र माइकल फूको से प्राप्त होता है (पी. रैबिनो, सं., *द फूको रीडर*, 1987 में 'ट्रुथ एण्ड पॉउवॅर') जो राज्य को समाज में पहले से ही विद्यमान सत्ता संबंधों पर आधारित मानते हैं। चन्धोक फूको के विषय में लिखती हैं, ''राज्य, उसने (फूको ने) निष्कर्ष निकाला है, सिर्फ़ समाज में प्रभुत्व स्थापन व उत्पीड़न के विद्यमान संबंधों के आधार पर ही चल सकता है।''

राज्य के दोनों ही परिप्रेक्ष्यों को ठुकराते हुए चन्धोक कहती हैं, राज्य नियंत्रणवादी (स्कोक्पॉल व अन्य) समाज कीमत पर राज्य पर ध्यान लगाते हैं, और फूकोलियन पद्धति में सिद्धांती राज्य की कीमत पर सामाजिक अंतर्क्रिया पर एकाग्रचित्त होते हैं।'' उनका निष्कर्ष है कि राज्य समाज के संबंध में और समाज राज्य के संबंध में समझे जाने के लिहाज से, ''एक सामाजिक संबंध है, क्योंकि यही सामाजिक संरचना की विधिबद्ध शक्ति है।''

10-2-2 ukxfjd lekt dk vFk

नागरिक समाज की अवधारणा, इसे एक अर्थ प्रदान करने के लिए, मान्यताओं, मूल्यों व संस्थाओं की एक सम्पूर्ण शृंखला अंगीकार करती है, जैसे कि राजनीतिक, सामाजिक व नागरिक अधिकार, कानून

का शासन, प्रतिनिधि–संस्थाएँ, एक सार्वजनिक क्षेत्र और सर्वोपरि है संघों का बहुत्व। इस पर टिप्पणी करते हुए डैविड हैल्ड (*मॉडल्स ऑफ डिमोक्रेसी*) ने कहा कि यह कायम रखती है ''एक विशिष्ट लक्षण उस सीमा तक कि यह सामाजिक जीवन–क्षेत्रों से मिलकर बनी है... घरेलू संसार, आर्थिक, सांस्कृतिक गतिविधियाँ तथा राजनीतिक अंतर्क्रिया... जो राज्य के सीधे नियंत्रण से बाहर व्यक्तियों, व समूहों के बीच निजी अथवा स्वैच्छिक प्रबंधों द्वारा आयोजित किए जाते हैं।'' राजनीतिक अन्तर्क्रिया के विषय में आगे, नागरिक समाज उसे भी अंगभूत करता है जिसे युर्गेन हैबरमस 'सार्वजनिक क्षेत्र' कहते हैं। नागरिक समाज के दृष्टिकोण को विस्तार देते हुए, हम इसमें ये बातें भी शामिल कर सकते हैं – आधुनिक राष्ट्रीय राज्य का प्राधार, आर्थिक आधुनिकीकरण, अन्य समाजों के साथ वृहद् अन्तर्सम्बद्धता, स्वतंत्र उद्यम तथा वह बात जिसका जॉन डूज (*वैस्टर्न पॅलिटिकॅल थिअरी*) ''आधुनिक प्रतिनिधि ा–लोकतांत्रिक गणतंत्र'' के रूप में उल्लेख करते हैं।

चन्धोक नागरिक समाज के अर्थ को इस प्रकार संक्षेप में कहती हैं– ''सार्वजनिक क्षेत्र के रूप में जहाँ व्यक्तिजन विभिन्न प्रयोजनों से एक–दूसरे के साथ आते हैं, अपने स्वाधिकार के साथ–साथ एक अस्तित्वयुक्त सत्ता के पुनर्प्रस्तुतिकरण हेतु भी, समाज कहलाता है।'' ''यह एक ऐसा'', वह आगे कहती हैं, ''क्षेत्र है जो कि सार्वजनिक है, क्योंकि यह औपचारिकतः सभी के लिए सुगम्य है, और सिद्धांततः इस क्षेत्र में अधिकारधारकों के रूप में सभी को प्रवेश प्राप्त है।''

नागरिक समाज की संकल्पना यथा और तैसे ही उभरकर आई, जब एक सामाजिक समुदाय स्वयं को राज्य–सत्ता के विशिष्ट दिशानिर्देश से स्वतंत्र संगठित करने का प्रयास करने लगा। ऐतिहासिक रूप से, यह संकल्पना, चन्धोक कहती हैं, ''तब अस्तित्व में आयी जब विख्यात् राजनीतिक अर्थशास्त्री 'मर्कैण्टाइलिस्ट स्टेट' यानी वाणिज्यवादी राज्य की सत्ता पर नियंत्रण करने का प्रयास करने लगे''। समय व्यतीत होने के साथ ही, नागरिक समाज की संकल्पना उत्तरोत्तर बढ़ चली : अठारहवीं सदी में लोकतांत्रिक आन्दोलनों के एक मुख्य घोषणापत्र का रूप लेते हुए।

10-2-3 jkT; vkj ukxfjd lekt d y{k.k

राज्य एक समाज में ही अस्तित्व रखता है। यह बात राज्य व समाज को विश्लेषणात्मक रूप से भिन्न बनाती है। यह दोनों एक से नहीं हैं। समाज सामाजिक संबंधों का एक जाल है और अतएव, सामाजिक प्रथाओं की समग्रता समाहित रखता है, जो कि अनिवार्यतः एकाधिक हैं, परन्तु साथ ही, युक्तिसंगत भी हैं। एक प्रदत्त समुदाय की क्रम–परंपराबद्ध रूप से आयोजित व समर्थित सामाजिक प्रथाएँ, बदले में, अपने सदस्यों के बीच सभी प्रकार के सत्ता समीकरणों व सम्बन्धों को स्थापित करती हैं। राज्य इन सत्ता–संबंधों को एक नियत–भाव, और उसके द्वारा समाज को अपनी स्थिरता, प्रदान करने भीतर आता है। राज्य सामाजिक प्रथाओं में व्यक्त किए गए सामाजिक संबंधों को वैधता प्रदान करता है, क्योंकि वह उन्हें मान्यता देता है और वैध कानूनों के माध्यम से उन्हें विधिबद्ध करता है। इसी अर्थ में राज्य की व्याख्या 'एक प्रदत्त समय की सामाजिक संघटन–संबंधी विधिबद्ध सत्ता' के रूप में की जाती है।

राज्य, ऐसा माना जाता है, स्वयं ही सत्ता का एक स्पष्ट और अमूर्त संगठन है, जहाँ तक कि वह सत्ता को औपचारिक विधि–संहिताओं व संस्थाओं में चुनने, वर्गीकृत करने, स्पष्ट और नियत आकार देने तथा सुव्यवस्थित करने की क्षमता रखता है। और यह क्षमता राज्य को प्रदान करती है उसकी पदवी– सत्ता, निर्णय लेने की शक्ति, निर्णयों को लागू करने की शक्ति, और उन लोगों को बाध्य करने की

शक्ति भी, जो उनका उल्लंघन करते हैं। परन्तु राज्य जैसा कि ऊपर माना गया है, अपनी शक्ति समाज से व्युत्पन्न करता है। यह, इस अर्थ में, एक विधिबद्ध अधिकार है, परन्तु समाज के उस ढाँचे के भीतर ही जिसमें वह काम करता है।

यह राज्य, एक सामाजिक संबंध के रूप में और किसी प्रदत्त समाज में एक विधिबद्ध सत्ता के रूप में भी, अपनी कुछ विशेषताएँ रखता है। इन विशेषताओं को निम्न प्रकार कहा जा सकता है :

क) राज्य एक सत्ता है, अपने आप में संगठित। यह औपचारिक विधि–संहिताओं व संस्थाओं के माध्यम से सामाजिक संबंधों को विधिकृत करने और उन्हें मान्यता प्रदान करने का अधिकार रखता है। यह उसे वर्गों और उसमें विद्यमान स्वायत्त प्रतिस्पर्धी गुटों से बनाते हुए राज्य को समाज में एक सुव्यक्त और अलघुकरणीय पद प्रदान करता है।

ख) राज्य विशिष्ट रूप से राजनीतिक प्रथाओं के एक सेट के रूप में उदय होता है, जो बाध्यकारी निर्णयों को परिभाषित करता है और उन्हें लागू करता है, सामाजिक जीवन के हरेक पहलू में हस्तक्षेप करने की हद तक।

ग) राज्य बलप्रयोग के सभी साधनों को एकाधिकार में लाता है। इस अधिकार को समाज में अन्य कोई भी संगठन नहीं रखता।

घ) राज्य सामाजिक संबंधों को नियत–भाव, और समाज को सामाजिक स्थिरता प्रदान करता है। सामाजिक व्यवस्था, चन्धोक के अनुसार, ''राज्य के माध्यम से स्थापित होती है और राज्य द्वारा तय किए गए मानदण्डों के भीतर ही अस्तित्व रखती है।''

ङ) राज्य एक प्रदत्त समाज के ढाँचे के भीतर ही अस्तित्व रखता है। जिस प्रकार समाज अनेक सामाजिक बलों द्वारा विवश करने वाली बदलती परिस्थितियों का प्रत्युत्तर देता है, राज्य बदलते समाज का प्रत्युत्तर देता है। राज्य हमेशा समाज के बदलते रिश्तों को प्रकट करता है। जैसे कि समाज निरन्तर स्वयं को पुनर्सम्पादित करता रहता है, ऐसा ही राज्य भी करता है।

नागरिक समाज के उदारवादी और मार्क्सवादी परिप्रेक्ष्यों में बेहद अंतर है। उदारवादियों के अनुसार, नागरिक समाज लोकतांत्रिक राज्यों को पहले से ही राज्यों के दायित्व, राज्य–सत्ता पर नियंत्रणों, स्वैच्छिक जीवन के प्रति उत्तरप्रदत्त तथा नागरिक समाज की अन्तर्क्रियाओं से सम्पन्न मानकर चलता है। मार्क्सवादियों के अनुसार, नागरिक समाज वर्ग–संघर्षों, स्वार्थपूर्ण प्रतिस्पर्धा व शोषण का अखाड़ा ही है, राज्य जहाँ अधिकारधारक वर्गों के हितों की रक्षा करने का काम करता है। उदारवादियों के साथ–साथ मार्क्सवादियों की भी अन्तर्दृष्टियों को अपनाने वाली किसी नागरिक समाज–संबंधी परिभाषा को निम्नलिखित बातें ध्यान में रखनी चाहिए :

क) राज्य–सत्ता को नियंत्रित अवश्य किया जाना चाहिए और उसे एक स्वतंत्र नागरिक समाज की लोकतांत्रिक प्रथाओं के माध्यम से उत्तरप्रद होना चाहिए।

ख) राजनीतिक दायित्व न सिर्फ़ संविधानों, कानूनों व नियमों में ही न न्यस्त रहे, प्रत्युत सामाजिक संरचना अथवा उस विषय–वस्तु में भी रहे जिसे हैबरमस 'राजनीतिक जनता' की योग्यता पुकारते हैं, जो बदले में, निम्नलिखित निहितार्थ रखती है : (i) इसका अर्थ है कि लोग आम मुद्दों के अखाड़े में, तर्क–वितर्कों तथा राज्य हस्तक्षेप से मुक्त चर्चा व संलाप में, एक–दूसरे के साथ आते हैं; (ii) यह सूचित करती है कि यह संलाप सभी के लिए सुगम्य है; और (iii) यह एक ऐसे स्थान का संकेत देती है, जहाँ सार्वजनिक चर्चा तथा बहस हो सकती है।

ग) लोकतांत्रिक मूल्य व प्रक्रियाएँ सामाजिक व्यवस्था में आत्मसात् करनी पड़ती हैं।

घ) नागरिक समाज ही समाज का सार्वजनिक क्षेत्र है। यही इन प्रक्रियाओं का स्थान–निर्धारण है, जिसके द्वारा व्यक्तियों व समुदायों के अनुभवों, तथा बहसों व चर्चाओं में अनुभवों की अभिव्यक्ति, अभिपुष्टि व व्यवस्था का सम्पर्क सूत्र बनाया जाता है। यह एक रंगमंच भी है, जहाँ ''निजी व सार्वजनिक के बीच द्वन्द्ववाद के प्रबन्ध किए जाते हैं''। ''यह वह प्रक्रिया है, जिसके द्वारा समाज राज्य द्वारा उन्मुक्त किए गए समकालिक ''दाँवयोगीकरण'' का ''अतिक्रमण'' तथा प्रतिकार करने का प्रयास करता है'' (चाबैल, पी., सं., *पॅलिटिकॅल डॉमिनेशन इन ऐफ़्रिका : रिफ़्लेक्शन्स ऑन द लिमिट्स ऑफ पाउवॅर* में बेयार्ट, ''*सिविल सोसाइटि इन ऐफ़्रिका*'')। यह एक ऐसा स्थल है, जहाँ राज्य को आम राय तथा अनुभवों को इच्छित रूप देना निषिद्ध है।

10-3 jkT; dh vo/kkj.kk % ,d i;oyksdu

राज्य चूँकि राजनीतिक सिद्धांत का यथार्थ मर्म है, उसे प्राचीन यूनान के समय से ही विभिन्न राजनीतिक दार्शनिकों द्वारा भिन्न–भिन्न रूप से परिभाषित किया गया है। कुछ के लिए, यह बलपूर्वक शासन की एक संस्था है, जबकि दूसरों के अनुसार, जनता के अधिकारों का यही परिरक्षक है। जबकि विप्लववादियों की भाँति कुछ तो राज्य को फ़ौरन ही समाप्त कर देना चाहते हैं, गैर–मार्क्सियन रंगत लिए समाजवादियों की भाँति अन्य लोग समाजवाद की स्थापना करने के लिए उसे टिका देखना चाहते हैं।

इस तथ्य के बावजूद कि राज्य का अर्थ भिन्न–भिन्न लोगों द्वारा भिन्न–भिन्न लिया गया है, हम राजनीतिक सिद्धांत में जो राज्य का प्रमुख स्थान है, उससे इंकार नहीं कर सकते। हमारे लिए यह बेहतर होगा कि हम समाज की तुलना में राज्य के उस अर्थ पर चर्चा करने का प्रयास करें, जो हमें अधिकांश पूर्वी राजनीतिक दार्शनिकों द्वारा बतलाया गया है।

10-3-1 iwo&vk/kqfud ijEijk

राजनीतिक सिद्धांत में प्लेटो (428/7–348/7 ईसा पूर्व) की सारी रचनाओं में एक सशक्त दृभटांत है जो वह एक सर्वशक्तिमान शासन के पक्ष में प्रस्तुत करते हैं। समस्या जिसके पीछे प्लेटो लगे रहे, वह यह नहीं थी कि किसी सरकार को कितना अच्छा बनाया जा सकता है, बल्कि यह थी कि सरकार को कितनी अच्छी तरह यथाविधि अधिकृत किया जा सकता है। यह सरकार का ही काम है, प्लेटो ने एक से अधिक बार अभिपुष्टि की, कि वह लोगों को एक समूचा जीवन जीने में मदद करे। यह, इस प्रकार, प्लेटो के लिए महज़ एक सरकार का मसला नहीं है, वरन् एक समुचित सरकार का मसला है, महज़ एक चाहे जैसी सरकार नहीं, बल्कि एक एक परिपूर्ण सरकार, वह सरकार जो उन सभी के लिए सुख–शांति लाने में समर्थ हो, जो उसके अंतर्गत वास करते हैं। प्लेटो के अनुसार, राज्य रिश्तों की एक ऐसी व्यवस्था है, जिसमें हर व्यक्ति अपना काम करता है और जहाँ राज्य का काम है कायम रहना, और ऐसे रिश्तों को बढ़ावा देना।

अपने गुरु प्लेटो का अनुसरण करते हुए, अरस्तू (384–322 ईसा पूर्व) ने राज्य को इस रूप में परिभाषित किया – एक समुदाय रूप में *पॉलिस* (प्राचीन यूनानी राज्य के लिए पॉलिस का प्रयोग करते थे), जो सर्वोच्च कल्याण हेतु अस्तित्वपरक है। उनका कहना है कि राज्य ''घरों व गाँवों का एक संघ

है, जो नैतिक सद्‌गुण सम्पन्न जीवन में सहभागी होते हैं, और उस लक्ष्य को लेकर चलते हैं, जो परिपूर्ण एवं स्व–सम्पूर्ण अस्तित्व में विद्यमान रहता है।''

प्लेटो व अरस्तू दोनों, तथा जहाँ तक उसका संबंध है सभी यूनानी, पॉलिस को एक राज्य से कहीं अधिक मानते थे। यह एक प्रशासनिक तंत्र, एक सरकार अथवा एक राज्य व्यवस्था का ढंग था, बल्कि एक विद्यालय, एक चर्च भी था जो जीवन रीति हेतु दिशानिर्देश तय करता था, जो उनके अनुसार, और कुछ नहीं बस एक सम्पूर्ण जीवन व्यतीत करना था। प्लेटो और अरस्तू के अनुसार, राज्य और समाज के बीच कोई भेद नहीं था : राज्य एक साधन था और समाज का एक अंग; यह समाज में स्वयं ही निमग्न था। इसके अतिरिक्त, यूनानी लोग पॉलिस को एक नैतिक दृष्टि से सही सत्ता मानते थे और यही कारण था कि वे राज्य के शासकों द्वारा निष्पादित किए जाने वाले नैतिक दृष्टि से सही प्रकार्यों को ही उन्हें सौंपते थे, तथा उत्तम, सुखी और परिपूर्ण जीवन। बार्कर लिखते हैं, ''यह (पॉलिस) किसी कानूनी प्राधार से कहीं अधिक है : यह एक नीति आधृत शक्ति भी है''। कोई भी प्राचीन यूनानी स्वयं को कभी भी पॉलिस से विलग नहीं मानता था, वह पॉलिस का महज एक हिस्सा था, समूचे का एक हिस्सा। बार्कर कहते हैं, ''यहाँ (प्राचीन यूनान में) व्यक्ति थे, राज्य से भिन्न, तो भी राज्य को आकार देते उनके साहचर्य में।'' वेपर भी कहते हैं, ''ताकि जीने लायक जीवन का कोई अर्थ हो, और केवल पॉलिस में ही उन्हें (यूनानीजन को) पक्का भरोसा था, उन्हें अर्थ अवाप्त हुआ। प्राचीन यूनान में राजनीतिक, सामाजिक और नैतिक दृष्टि से सही जीवन के बीच कोई फ़र्क नहीं था। समाज ही राज्य था, क्योंकि राज्य प्लेटो के पक्ष में था और अरस्तू, एक शासन–शक्ति : स्वतंत्र व्यक्ति, विषय–विशेषज्ञ, एक नागरिक, एक विधिकर्त्ता व समाज का एक सदस्य था; उसने एक शासक बतौर समाज के एक सदस्य बतौर व्यक्ति, सभी व्यक्तियों, समूचे समाज पर शासन किया। प्राचीन यूनानी युग के दास–धारक समाज से शायद ही उम्मीद की जा सकती थी कि वह राज्य को कोई सिद्धांत देगा, केवल ऐसा नहीं, समाज का कोई सिद्धांत, सरकार के सिद्धांत से कुछ अधिक, सटीक रूप से, शासकों का सिद्धांत भी देगा।

राज्य की अवधारणा देने का श्रेय सिसरो की कृतियों को जाएगा, जो कि कोई पॉलिस नहीं बल्कि एक राष्ट्र–मण्डल है। प्राचीन यूनानियों की ही भाँति, सिसरो भी राज्य को समाज में निमग्न, एक अंग, यथा समाज का एक अभिन्न अंग, मानते हैं। सिसरो कहते हैं, ''राष्ट्रमण्डल, तदनुसार, जनता का मामला ही है, और राष्ट्र किसी भी तरीके से सम्बद्ध हरेक जन–समूह नहीं होता, बल्कि उन लोगों की एक गण्य संख्या का एक साथ उपलब्ध होना होता है, जो कानून व अधिकारों के विषय में एक सर्व–सम्मति द्वारा, और परस्पर लाभों में भागीदार होने की एक इच्छा द्वारा एकीकृत होते हैं।'' इस बात से, सिसरो का राज्य–संबंधी सिद्धांत निम्न प्रकार समझा जा सकता है : (i) राज्य को जन–समूहों, यथा समाज, से अलग माना जाता है; (ii) लोग राज्य में प्रविष्ट हो जाते हैं, जब वे कुछ निश्चित नियमों को मान लेते हैं, यह लोगों को एक 'कानूनी' पदवी प्रदान करता है, जो उन्हें 'कानूनी समुदाय' बनाने की ओर प्रवृत्त करता है; (iii) राज्य अस्तित्ववान रहता है, जब लोग उसके मामलों में भाग लेने को सहमत होते हैं''। सिसरो के सिद्धांत में, समाज–सिद्धांत से भिन्न एक राज्य–सिद्धांत है; वह राज्य व समाज के बीच भेद करते हैं; उनका राज्य–सिद्धांत सरकार–सिद्धांत के साथ–साथ एक राजनीतिक–समुदाय सिद्धांत भी है।

पश्चिम में मध्यकालीन राजनीति–सिद्धांत मुख्यतः ईसाइयत से सम्बन्ध रखता था, जहाँ सामाजिक जीवन पोप के नेतृत्व वाले रोमन कैथॉलिक चर्च के अधिदेशों द्वारा नियंत्रित एक धार्मिक जीवन अधिक था। ईसाई लोग तमाम दुनिया पर राज करते थे और राजनीति चर्च द्वारा नियंत्रित होती थी।

सांसारिक सत्ता को गिरजा–संबंधी सत्ता से निकृष्ट समझा जाता था, राज्य वृहत्तर संसार हेतु एक पाद–टिप्पणी के रूप में काम करता था। राज्य, मध्यकालीन यूरोपीय जगत् में, *सिटी ऑफ गॉड* (सन्त ऑगस्टीन) यानी 'परमेश्वर के शहर' पहुँचने के लिए साधन माना जाता था, और मानव कानून को दैवी कानून, प्राकृत कानून एवं अन्ततः, शाश्वत कानून के तहत काम करना होता था (सन्त थॉमस)। राज्य को नियंत्रित करने वाला समाज नहीं था, बल्कि वे थे जो शासन को नियंत्रित करते थे – पोप, चर्च–पादरीगण, राजागण और सामन्ती शासक जो राज्य को नियंत्रित करते थे, यानी राज्य–तंत्र।

10-3-2 mnkjoknh&0;fDroknh ijEijk

पंद्रहवीं–सोलहवीं शताब्दियों के दौरान, पश्चिमी दुनिया में आधुनिक युग के प्रवेश करते ही राज्य का एक निश्चित सिद्धांत सामने आया। उदारवादी–व्यक्तिवादी दार्शनिक गण, हॉब्स (1588–1679) और उसके बाद, राज्य को महज एक शासन की विषय–वस्तु बनाकर राज्य और समाज के बीच एक स्पष्ट भेद करने लगे। सभी उदारवादी, अपने–अपने राजनीति–सिद्धांत व्यक्तियों पर आधृत कर राजनीतिक सत्ता, राज्य, एक साधन रूप में स्थापित करने आये, हॉब्स जैसे कुछ उदारवादी राज्य को सभी शक्तियाँ प्रदान करते हुए, जबकि बैन्थम (1748–1832) जैसे अन्य इसे ग़ैर–हस्तक्षेपवादी राज्य बनाते हुए। सभी उदारवादी एक स्वायत्त व्यक्ति हेतु तर्क देते हैं, यथा वैयक्तिक स्वायत्तता हेतु वह उपाधि जो दार्शनिक दार्शनिक पर भिन्न–भिन्न है। उदारवादियों की उपाधियों में शामिल थे ''वैयक्तिक स्वतंत्रताएँ, अधिकार इतने सेवार्पित जैसे कि स्वाभाविक, स्वामित्व लोकाचार, कानून का शासन, मुक्त, प्रतिस्पर्धात्मक व पण्य अर्थव्यवस्था ... सभी राज्य–हस्तक्षेप से मुक्त रहने के लिए। आरम्भिक आधुनिक राजनीति–सिद्धांत राज्य और सरकार के बीच भेद नहीं कर सकता था, ... सभी लोग राज्य–सत्ता को राजनीतिक सत्ता, और राजनीतिक सत्ता को सरकार की शक्ति के रूप में लेते थे''।

मैकाइवलियन राज्य (राजनीति–विज्ञान में 'स्टेट' यानी राज्य शब्द के प्रचलन का श्रेय मैकाइवली को जाता है), चाहे राजतंत्र हो या गणतंत्र, एक सत्ता–राज्य होता है, जिसका अर्थ है कि यह सत्ता के लिए ही विद्यमान है और सत्ता के कारण ही अस्तित्व रखता है, तथा जिसकी खास दिलचस्पी अपने ही प्राधिकार को कायम रखने, बढ़ाने और विस्तार देने में ही होती है। बोदां (1530–1596) के अनुसार, राज्य है – ''परम शक्तियों के साथ, विभिन्न कुटुंबों, व उनके सर्वमान्य मामलों की एक वैध सरकार'', राज्य के मामलों को 'जनता' से संबद्ध मानते हुए। ''मनुष्य का अन्तिम उद्देश्य, साध्य, अथवा अभिप्राय'', हॉब्बस कहते हैं, ''उनके अपने बचाव की, और एक अधिक तर्कसिद्धि जीवन की परिणामदर्शिता ही है।''

लॉक (1632–1704) के पास उदारवादी सिद्धांत प्रेरणा पाता है और राज्य स्वामित्व की रक्षार्थ, एवं एक बेहतर आर्थिक जीवन के प्रोत्साहनार्थ, सिद्ध होता है, क्योंकि उदारवाद पूँजीपति वर्ग के राजनीतिक तत्त्वज्ञान के रूप में स्थायी बन जाता है, ज़मूरियती लज्ज़त इसमें विकास के एक बाद के चरण में आती है। आरम्भिक उदारवादी–लोकतांत्रिक सिद्धांत ने राज्य की भूमिका को अल्पतम सीमा तक बाँध कर दिया, एक ओर अपने नागरिकों के जीवन, स्वतंत्रता व स्वामित्व को बाह्य आक्रमण व आन्तरिक अव्यवस्था से बचाते हुए, तथा दूसरी ओर न्याय व सार्वजनिक कार्य–व्यवस्था, एवं सुख–सुविधाएँ मुहैया कराते हुए, साथ ही उसकी लोगों की भलाई हेतु लेशमात्र भी भूमिका नहीं थी।

पहले जॉन स्टुअर्ट मिल (1806–1873), तथा बाद में टी.एच. ग्रीन (1836–1882) ही थे, जिन्होंने एक ऐसे प्रेरक वातावरण को तैयार करने में राज्य की सकारात्मक भूमिका को विस्तार दिया, जहाँ व्यक्ति

जीवन का एक बेहतर ज़रिया अख़्तियार कर सके। मिल और ग्रीन ने राज्य के संगठन और कार्य–व्यापार में लोकतांत्रिक तत्त्वों का समावेश किया, यद्यपि दोनों अपनी पूँजीवादी बेड़ियों को मुश्किल से ही काट सके।

संक्षेप में, कहने के लिए, हम इसीलिए यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि मैकाइवली एवं बोदां जैसे आधुनिक राजनीति–सिद्धांती सर्वशक्तिमान राज्य से परे शायद ही देख सकते थे। संविदावादियों, ख़ासकर हॉब्बस ने सोचा था कि नियमानुसार समाज को अस्तित्व में लाने के लिए, एक सशक्त राज्य की आवश्यकता है। लॉक, स्मिथ, बैन्थम जैसे आरम्भिक उदारवादियों ने इस दृष्टिकोण को रखा कि चूँकि समाज स्वयं को पुनर्प्रस्तुत एवं पुनरुज्जीवित करने की क्षमता रखता है, राज्य और उसकी सत्ता अल्पतम होनी चाहिए। परन्तु बाद के उदारवादियों, जे.एस. मिल, टी.एच. ग्रीन, द तॉक़विल ने महसूस किया कि बहुत से सामाजिक संघ, सामाजिक योग्यता बढ़ाते–बढ़ाते, ऐसे साधन बन सकते हैं, जिनके माध्यम से व्यक्तिजन एक ऐसे राजनीति–सिद्धांत को रूप दे सकते हैं जो राज्य–सत्ता की प्रकृति को सीमित कर सकता है। उदारवादी अनेकवृत्तिभोगी, बीसवीं सदी के तीसरे व चौथे दशकों में, समाज में विद्यमान अनेक संस्थाओं के लिए एक सशक्त दृष्टांत को जन्म देने में सक्षम थे, ताकि वे समाज के दावों के सामने राज्य की तुलना करते समय परवर्ती की सर्वशक्तिसम्पन्नता पर अंकुश रख सकें।

10-3-3 ekfDlI;u ijEijk

राज्य का मार्क्सियन सिद्धांत उदारवाद के विरुद्ध एक प्रतिक्रिया स्वरूप में उभरा। मार्क्सवादियों के अनुसार, राज्य व समाज दो भिन्न सत्ताएँ हैं, यद्यपि राज्य समाज से स्वतंत्र नहीं है। समाज का प्रकार राज्य के प्रकार की व्याख्या करता है, समाज ही वह आधार प्रदान करता है, जिस पर अन्य आधृत सिद्धांत या विचार टिके हैं। मार्क्सवादी, राज्य को किसी वर्ग समाज के एक उत्पाद रूप में लेते हुए, यह मानते हैं कि राज्य आविष्ट वर्ग का रक्षण व समर्थन करती हुई, और अनाविष्ट वर्ग का उत्पीड़न व अवपीड़न करती हुई एक संस्था हो। उनके अनुसार, राज्य वर्ग शासन का एक इंजन है। परन्तु यह सामाजिक व राजनीतिक परिवर्तन का भी एक हथियार है, इसका नकारात्मक कार्य है, पूर्ववर्ती समाज के अवशेषों को नष्ट कर देना, जबकि यह, अपने रचनात्मक कार्यों से, उस वर्ग की संरचना व संस्कृति का निर्माण करता है जिसके द्वारा वह चलाया जाता है।

चन्धोक राज्य–संबंधी मार्क्सवादी सिद्धांत के तीन सैद्धांतिक क्षणों की पहचान करती हैं। प्रथम ऐसा क्षण तब रहा जब मार्क्स व एंजिल्स, *मैनिफ़ैस्टो ऑफ कम्युनिस्ट पार्टी* (1848) में ''आधुनिक राज्य की कार्यकारिणी'' को ''समग्र पूँजीवादी वर्ग के सर्वसामान्य मामलों के प्रबंधार्थ एक समिति'' मानते हैं। मार्क्स *टुवर्ड्स ए क्रिटीक ऑफ पॅलिटिकॅल इकॉनॅमी* (1859) की प्रस्तावना में भी लिखते हैं, '' इन उत्पादन–संबंधों की समग्रता समाज के आर्थिक प्राधार, यथार्थ आधार, का निर्माण करती है, जिस पर एक कानूनी एवं राजनीतिक अधिरचना जन्म लेती है और जो सामाजिक चेतना के परिभाषित रूपों के अनुकूल होती हैं। राज्य का यह आधार–अधिरचना मॉडल निर्गुण राज्य की उदारवादी संकल्पना के प्रति परिवर्तन विरोध था, जो नागरिक समाज को अपने अधीनस्थ करते समय सर्व–शक्तिमान राज्य के हैगैलियन मॉडल के खिलाफ़ एक प्रतिक्रिया स्वरूप भी समाज से दूर खड़ा था। दूसरा क्षण, जो उन्नीस सौ साठ के दशक के आसपास और राल्फ मिलिबाँ एवं हमज़ा अल्वी के साथ आया, राज्य की प्रकृति व समाज के साथ अपने संबंध पर प्रश्न करता है। इसमें, राज्य अपने ही हक़ में एक भिन्न सैद्धांतिक विषय के रूप में उभरता है और राज्य–केन्द्रिक सिद्धांत राजनीति–सिद्धांत की प्रबल धारा

के रूप में उभरा। तीसरा सैद्धांतिक क्षण निकॉ पुलैन्त्ज़ास एवं क्लौस ऑफ के योगदानों से संभव बनाया गया। इस क्षण देखा गया कि राजनीति–सिद्धांतियों ने अवधारणाओं व सिद्धांतों के साथ पूर्वाधिकार कर लिया। ग्राम्सी, जिन्होंने नागरिक समाज के राजनीतिक विचार रूप में राज्य को वैचारीकृत कर दिया था, का अनुसरण करते हुए तृतीय सैद्धांतिक क्षण के मार्क्सवादी राजनीति–सिद्धांतियों ने उस सामाजिक वर्ग के रूप में नागरिक समाज में एक सर्पिल गति से बढ़ती रुचि पैदा कर दी, जहाँ अर्थपूर्ण प्रथाएँ, शासक व विनाशक दोनों, लोकप्रिय हैं।

10-4 ukxfjd lekt dh vo/kkj.kk % ,d i;Zoyksdu

नागरिक समाज की संकल्पना पाश्चात्य बौद्धिक परम्परा से जुड़ी है। वीरगाथात्मक परिवर्तनों के साथ ही, पश्चिम में, नागरिक समाज का विचार उत्तरोत्तर विकसित हुआ है। अनेक कारक राज्य की संकल्पना को विकसित करने में जुटे हैं, क्योंकि यह हमारे साथ ही रहने आया है। उन्नीसवीं सदी के अन्त तक इन कारकों में कुछ के उल्लेखार्थ, शामिल रहे – धर्मनिरपेक्ष प्राधिकरण का उदय, स्वामित्व–संबंधी संस्था का विकास, निरंकुश राज्य का पतन, शहरी संस्कृति का विकास, राष्ट्रवादी व लोकतांत्रिक आन्दोलनों का उदय तथा कानून का शासन। जिस प्रकार पूँजीवादी अर्थव्यवस्था अपने लोकतंत्रीकरणशील अभिलक्षणों के साथ विकसित हुई है, ऐसा ही नागरिक समाज की संकल्पना ने किया है।

10-4-1 iwo&vk/kqfud ijEijk

यदि नागरिक समाज की धारणा अपने में इस बात का विचार रखती है कि सार्वजनिक क्या है, पूर्व–आधुनिक काल को सहज रूप से नागरिक समाज की अवधारणा के विरुद्ध माना जा सकता है। प्लेटोनिक शासक अकेले ही प्रशासक होते थे और उनमें से बड़ी संख्या उन लोगों की थी, जिनकी सार्वजनिक मामलों में कोई भूमिका नहीं होती थी और जो 'उत्पादक वर्ग' का निर्माण करता था। अरस्तू की ज़ून पॅलिटिकॅन यानी मनुष्य एक राजनीतिक प्राणी के रूप में संबंधी धारणा इस अर्थ में लचर थी कि (i) राजनीतिक प्राणी पुरुष होता था; (ii) वह अकेले ही नागरिक होता था; (iii) वह अकेले ही स्वामित्वधारक होता था। जनसंख्या का शेष भाग महिलाएँ, दास आदि, ऑइक्स, यानी असार्वजनिक संसार, का निर्माण करता था, और मुश्किल से ही नागरिक समाज का निर्माण करता कहा जाता था। चूँकि 'असार्वजनिक' 'सार्वजनिक' नहीं था, यह राजनीतिक नहीं था और इससे संबंध रखने वाला कोई भी व्यक्ति नागरिकता अधिकार नहीं रखता था। यूनानी समाज, चन्धोक बताती हैं, ''वैयक्तिक स्वतंत्रता हेतु मनुष्य की कोई भी संक्राम्य अधिकार–संबंधी धारणा नहीं रखता था जो कि नागरिक समाज की आरंभिक व्याख्या का एक इतना प्रमुख अभिलक्षण बन गया।''

अधिकारों की अवधारणा विकसित करके, कानूनी रूप से विहित, और विशेष रूप से व्यक्ति के स्वामित्व से संबंध रखते हुए, प्राचीन रोमन विचारणा में 'नागरिक समाज' की धारणा ने जन्म लिया। दरअसल 'नागरिक समाज' की धारणा को ऐसे वातावरण की आवश्यकता थी, जिसमें वह अपने को ढाल सके, परन्तु प्राचीन रोमन विचार शायद ही उससे ऊपर जा सकता था, इसके बावजूद भी 'असार्वजनिक' व 'सार्वजनिक' के बीच भेद करने के प्रयास हो रहे थे जिसमें प्राचीन–रोमवासी वास्तव में सफल रहे।

पश्चिम में सम्पूर्ण मध्यकाल के दौरान, जब राजनीति को एकदम पीछे रखा जाता था, नागरिक समाज के विचार का महत्त्व कम हो गया। 'राजनीतिक' के रूप में 'सार्वजनिक' से जो कुछ भी संबंधित था, बहुत ही थोड़े लोगों तक सीमित था जिन्हें सामन्ती लॉर्ड, बैरन, ड्यूक और काउण्ट कहा जाता था। नागरिक समाज का विचार अज्ञातप्राय था।

10-4-2 mnkjoknh&0;fDroknh ijEijk

आरंभिक आधुनिक काल में मैक्यावली व बोदां के साथ राजनीति का उदय देखा गया, परन्तु इस काल ने स्वयं नागरिक समाज–संबंधी विचार की अनुकूल वृद्धि नहीं देखी। नागरिक समाज, एक संकल्पना के रूप में, अधिकारधारक व्यक्तियों, राज्य से संबंधित व्यक्तियों, तथा समाज में दूसरों से संबंधित व्यक्तियों का विचार लेकर उठा।

हॉब्बस व लॉक दोनों में नागरिक समाज का स्पष्ट संदर्भ है, जहाँ ये दोनों ही अनुबंध हो जाने के बाद 'प्रकृति के राज्य', और 'नागरिक समाज' अथवा 'राजनीतिक समाज' के बीच भेद करते हैं। दोनों ही अधिकारधारक व्यक्तियों के बारे में बतलाते हैं; दोनों ने ही इन अधिकारों की रक्षार्थ राज्य की शरण ली। संविदावादियों, हॉब्बस व लॉक, को नागरिक समाज के सिद्धांतवादियों के रूप में लेना मुश्किल है क्योंकि ;पद्ध नागरिक समाज पर उनके प्रतिपादन एक अपरिपक्व अवस्था में हैं और ;पपद्ध उनके प्रयास, राज्य व समाज पर एक युक्तियुक्त एवं विश्वासोत्पादक व्याख्या के बावजूद, यादृच्छिक रहे (देखें चन्धोक, *स्टेट एण्ड सिविल सोसाइटि*)।

नागरिक समाज की संकल्पना सत्रहवीं व उन्नीसवीं शती के बीच स्पष्ट रूप से उभरी, ख़ासकर एडम स्मिथ जैसे विख्यात् राजनीतिक अर्थव्यवस्था–सिद्धान्तियों के सहारे। शास्त्रीय राजनीतिक अर्थव्यवस्था ने अहस्तक्षेप–सिद्धांत, स्वतंत्रता, समानता जैसे वैयक्तिक अधिकारों की हामी भरते हुए राज्य की संस्था को, उसका अवमूल्यन करते हुए, सहज ही अप्रासंगिक बना दिया, और नागरिक समाज की संस्था को वह रूप दे दिया जिसे मार्क्स ने 'इतिहास का रंगमंच' कहा था। इसने ''नागरिक समाज'' की मदद की, चन्धोक लिखती हैं, ''वैयक्तिक अधिकारों व स्वतंत्रताओं के एक ऐतिहासिक रूप से उत्पन्न क्षेत्र के रूप में, जहाँ एक–दूसरे से होड़ में लोग अपने निजी स्वार्थ साधने में ही लगे रहे।''

राजनीतिक अर्थव्यवस्था सिद्धांतियों के लेखों से आये नागरिक समाज–संबंधी विचार का आगमन को अपना आकार राज्य की तुलना में ग्रहण करना था। जे.एस. मिल एवं द तॉकविल, जो यह सोचते थे कि राज्य इच्छा से अधिक शक्तिशाली हो चुका है, ने नागरिक समाज की सदा–विकासमान संकल्पना में अविष्कृत यंत्र–क्रियाविधि के माध्यम से राज्य की शक्ति को परिसीमित करने का प्रयास किया। चन्धोक उदारवादी के इस चरण का यह कहते हुए निष्कर्ष निकालती हैं कि ''... नागरिक समाज एक संकल्पना के रूप में मुख्यतः राज्य–समाज संबंधों को सुव्यवस्थित रूप देने के लिए प्रयोग किया जाता था। राज्य का विस्तार, यह बोधक्षम रूप से जान लिया गया, नागरिक रणक्षेत्र के संकुचन में योगदान देगा। राज्य–सत्ता सिर्फ़ नागरिक समाज के विस्तार के सहारे ही सीमित की जा सकती थी।''

पश्चिम में लोकतंत्रीकरण की प्रक्रिया ने नागरिक समाज के लिए यह संभव बना दिया कि वह स्वयं विस्तीर्ण हो, और इस प्रक्रिया में, राज्य के क्षेत्र को सीमाबद्ध कर दिया। परन्तु अन्यत्र नहीं, राज्य की संकल्पना ने इस प्रकार, नागरिक समाज के रणक्षेत्र को सीमाबद्ध करते हुए, प्रमुखता प्राप्त कर ली। हेगैल के विचार, और इसी कारण, मार्क्स व ग्राम्सी के विचार कुछ रुचिकर हो सकते हैं।

10-4-3 gxfy;u] ekfDl;u vkj xkfEl;u ijEijk,

हेगैल (1770–1831) के लेखों में राज्य व नागरिक समाज के बीच एक निश्चित संबंध है। वह राज्य को विभिन्न संस्थाओं की बढ़वार से पनपते अंततम संबंध के रूप में देखते हैं। राज्य का वर्णन सार्वत्रिकता का प्रतिनिधित्व करते परिवारों के विषय–विशेष तथा नागरिक समाज–संबंधी वैपरीत्य के संयोजन के रूप में करते हुए, हेगैल राज्य को नागरिक समाज की अपेक्षा उच्च जिन्स के रूप में देखते हैं। हेगैल राज्य को सामाजिक संस्थाओं का उच्चतम, नवीनतम और यहाँ तक कि अन्तिम रूप भी मानते हैं। उनके अनुसार, नागरिक समाज, परिवार–संबंधी विषय–विशेष की विपरीतता के रूप में ''उस मध्यवर्गीय वाणिज्यिक समाज के वैयक्तिक एवं अणुकृतकारी वातावरण हेतु एक अभिव्यक्ति है, जिसमें संबंध बाह्य होते हैं, जो लोगों की आत्म–सचेत इच्छा द्वारा होने की बजाय आर्थिक कानूनों के 'अदृश्य' हाथ द्वारा नियंत्रित होते हैं।'' अतः, नागरिक समाज, एक नकारात्मक संस्था जैसी कि वह हेगैल के अनुसार है, ''वैयक्तिक इच्छाओं के अयुक्तिसंगत बलों के एक परिणाम, बलकृत आवश्यकता के विषय से संबंध रखता है'', जो कि, जैसा कि सैबाइन हेगैल के लिए कहते हैं, ''इतर–नैतिक अस्थायी कानूनों तथा इस कारण नीतिशास्त्र की दृष्टि से अराजक'' द्वारा नियंत्रित होता है। विषय–विशेष (परिवार) तथा वैपरीत्य (नागरिक, मध्यवर्गी समाज) उसमें विलीन हो जाते हैं, जिसे हेगैल राज्य (संयोजन) कहते हैं। इस प्रकार, राज्य नागरिक समाज की सार्वभौमिकता तथा परिवार की विशिष्टता एवं वैयक्तिकता को ग्रहण करता सिद्ध होता है।

इस प्रकार, जबकि राजनीतिक अर्थव्यवस्था तथा उदारवादी–लोकतांत्रिक सिद्धांतियों ने नागरिक समाज को प्राथमिकता दी, और राज्य को एकदम पीछे रखा, हेगैल ने यह स्थिति बदल दी है और वह राज्य को नागरिक समाज के स्थान पर रखते हैं। हेगैल के अनुसार, अन्ततोगत्वा नागरिक समाज राज्य के, और समक्ति हेतु व्यक्ति के मातहत आता है। ''परिणामस्वरूप, हैगेलियन प्रतिपादन में,'' चन्धोक कहती हैं, ''राज्य, सार्वत्रिकता हेतु उसकी रूपरेखा, अथवा उस तर्काधार पर कोई प्रश्न नहीं किया जा सकता है। नागरिक समाज के विवाद का हल राज्य ही है, और इसी कारण, जन–समाज व राज्य के बीच, कोई न्याय–द्वैदाश्य नहीं, सिर्फ़ वैधता एवं स्वीकृति है।''

मार्क्स, हेगैल से भिन्न जिन्होंने नागरिक समाज को एक बन्धक व्यक्ति बना दिया था और जिन्होंने राज्य को आदर्शीकृत किया था, नागरिक समाज को इतिहास का रंगमंच बनाने की अवस्था तक उसकी पुनर्प्राप्ति हेतु प्रयास करते हैं। परन्तु नागरिक समाज, मार्क्स का तर्क है, अपने वायदों को पूरा करने में असफल रहा है, ऐसी स्थिति पैदा करने में विफल रहा है, जहाँ व्यक्ति आज़ादी और ज़मूरियती बदलाव देख सके, उसे ऐसी विधियों व साधनों का सहारा लेना पड़ा जिसके माध्यम से लोग समाज व राज्य के भीतर एकीकृत हो सकें।

ग्राम्सी (1891–1937) मार्क्स का अनुसरण करते हुए और राज्य–संबंधी अपना ही सिद्धांत विकसित करते हुए नागरिक समाज की वास्तविकता का ध्यान रखते हैं। उनका मुख्य कथन है कि हम नागरिक समाज को समझे बग़ैर राज्य को नहीं समझ सकते हैं। उनका कहना है कि 'राज्य' को न सिर्फ़ सरकार के राजनीतिक तंत्र के रूप में लिया जाना चाहिए, बल्कि आधिपत्य अथवा नागरिक समाज के 'निजी' तंत्र के रूप में भी लिया जाना चाहिए। राज्य की मार्क्सियन अवधारणा पर भरोसा करते हुए, ग्राम्सी एक राजनीतिक संगठन के रूप में राज्य (अंगभूत राज्य, नागरिक समाज का दृश्य राजनीतिक संघटन) और सरकार के रूप में राज्य के बीच भेद करते हैं। अंगभूत राज्य नागरिक समाज में स्थापित गतिविधियों के माध्यम से रोज़मर्रा की ज़िन्दगी की जद्दोज़हद में स्वयं को लघुकृत करता रहता है।

आधिपत्य ही नागरिक समाज में व्यवहार हेतु नैतिक व मानसिक नेतृत्व प्रदान करता है। आधिपत्य, ग्राम्सी के अनुसार, दोनों के लिए काम करता है, नागरिक समाज में प्रभुत्वसम्पन्न के साथ–साथ सबसे निचले ओहदे के वर्ग के लिए भी। हरेक वर्ग को अवश्य ही, ग्रम्सी के अनुसार, सत्ता हासिल करने से पहले, समाज में सामाजिक संबंधों का आधिपत्यीकरण करना चाहिए।

संक्षेप में, यह कहा जा सकता है कि उदारवादी तथा मार्क्सवादी दोनों ही प्रकार के लोगों के लिए, नागरिक समाज मुख्य है। जबकि उदारवादीजन राज्य की स्वायत्तता से नागरिक समाज के पृथक्करण हेतु तर्क रखते हैं, मार्क्सवादीजन, दूसरी ओर, नागरिक समाज की एक वैकल्पिक परम्परा का निर्माण करते हैं, जिसमें नागरिक समाज को, अपनी सभी क्षमताओं के सहारे, स्वयं को हमेशा मान्य और रूपान्तरित रखना पड़ता है।

10-5 jkT; vkj ukxfjd lekt d chp lEcU/k

राज्य व नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध का महत्त्व है, जहाँ तक कि वह प्रत्येक की तुलनात्मक स्थिति को दूसरे के संबंध में बतलाता है। कुछ विश्लेषणों में, इस संबंध का एक शून्य–राशि क्रीड़ा के रूप में वर्णन किया जाता है : राज्य जितना सशक्त होगा, नागरिक समाज उतना ही कमज़ोर होगा; राज्य जितना कमज़ोर होगा, नागरिक समाज उतना ही मज़बूत होगा। स्पष्टतः राज्य की गतिविधि का क्षेत्र–विस्तार नागरिक समाज की भूमिका कम करने में मदद करेगा; सभ्य समाज का क्षेत्र–विस्तार, दूसरी ओर, राज्य की भूमिका घटाने में मदद करेगा। मौजूदा जमाने के आधुनिक उदारवादी समाजों में, नागरिक समाज का 'दायरा', राज्य–क्षेत्र से कहीं अधिक बड़ा है, जबकि किसी भी प्रकार की तानाशाह राज्य–व्यवस्थाओं में, राज्य का 'दायरा' नागरिक समाज के दायरे से कहीं अधिक बड़ा होता है।

10-5-1 jkT; vkj lekt % l?kVudkjh lEc/k

राज्य और नागरिक समाज दो परस्पर विरोधी संकल्पनाएँ नहीं हैं। एक संकल्पना दूसरे के साथ विवाद में नहीं पड़ती। इनमें से कोई भी एक दूसरे की प्रतिपक्ष नहीं है। दोनों को एक–दूसरे का इलाका हड़पने के रूप में नहीं देखा जाना चाहिए। यह इन दोनों के बीच कोई शून्य–राशि क्रीड़ा संबंध नहीं है। वस्तुतः, अपेक्षाकृत रूप से अधिक सशक्त राज्य नागरिक समाज की भूमिका पर एक पारितोषिक रखता है, परन्तु यह, किसी भी प्रकार, नागरिक समाज की प्रभाविता को कम नहीं करता। इच्छास्वातंत्र्यवादी दृष्टिकोण, हेयर अथवा नोज़िक के लेखों में व्यक्त, कि राज्य नागरिक समाज का दमन करने की प्रवृत्ति रखता है, कमोबेश, दुर्स्थापित है। बात की सच्चाई यह है कि राज्य और नागरिक समाज के बीच सम्बन्ध पारस्परिक हैं; ये संबंध अखण्ड्य प्रवृत्ति के हैं, हर एक दूसरे के महत्त्व को मज़बूती प्रदान करता है। राज्य के बिना नागरिक समाज के सफलतापूर्वक कार्य करने की कल्पना करना, दरअसल, मुश्किल है। हम देखते हैं कि एक ही समय नागरिक को सीमाबद्ध किया जाता है और उसके द्वारा संरक्षण दिया जाता है। राज्य ही वह संघट्य ढाँचा प्रदान करता है, जो नागरिक समाज संचलित करता है; नागरिक समाज राज्य के बिना ठीक से काम नहीं कर सकता। यह संघट्य ढाँचा, जैसा कि कानूनों एवं नियमों में व्यक्त है, सभी के द्वारा स्वीकार किया जाता है, इस ढाँचे का निष्पक्ष रूप से और समाज की सहभागित संस्कृति के साथ सुसंगत रीति से देख–रेख किए जाने की आवश्यकता है। हम इस संघट्य ढाँचे के बिना जीवन की कल्पना नहीं कर सकते हैं, जो कि एक

सामंजस्यता की स्थिति पैदा करता है और जिसके बिना नागरिक समाज अनागरिक हो जाने की संभावना रखता है। नागरिक समाज को मुखर होना पड़ता है, सर्व–शक्तिशाली राज्य के बावजूद, ताकि वह नौकरशाह युक्तियों को चुनौती दे सके वरना वह सख़्ती में दबकर रह जाएगा। इस प्रकार, राज्य व नागरिक समाज के बीच पारस्परिकता ही है जो महत्त्वपूर्ण है अथवा कम से कम, महत्त्वपूर्ण मानी जानी चाहिए। राज्य–सत्ता का प्रयोग नागरिक समाज के वृहत्तर और अधिक व्यापक क्षेत्र में किया जाना होता है, साथ ही, नागरिक समाज को राज्य–सत्ता के प्रति सजग रहना पड़ता है ताकि वह निरंकुशवाद में न निकृष्ट हो जाए।

10-5-2 jkT;] ukxfjd lekt vkj ykdr=

इन दो संकल्पनाओं, राज्य व नागरिक समाज, का आपस में कोई विवाद नहीं है। लोकतंत्र दोनों को एकीकृत करता है। राज्य के दावे नागरिक समाज द्वारा मज़बूत होते हैं और नागरिक समाज राज्य के माध्यम से अधिक स्थिर बनाया जाता है। दोनों को ही एक लोकतांत्रिक ढाँचे : लोकतांत्रिक नागरिक समाज के ढाँचे के भीतर लोकतांत्रिक राज्य, में काम करना होता है। एक लोकतांत्रिक व्यवस्था में, राज्य व नागरिक समाज प्रत्येक के प्रभावी कार्यसंचालन हेतु मिलकर काम कर सकते हैं। राज्य को लोकतांत्रिक रूप से संघटित किया जाना होता है, जहाँ उसकी शक्तियाँ विकेन्द्रीकृत होती हैं और उसके कार्य पूर्व–निर्धारित नियमों व प्रक्रियाओं के भीतर ही संपादित किए जाते हैं। इस प्रकार के राज्य को नागरिक समाज की सदा–वर्धमान माँगों का जवाब देना पड़ता है। उसकी भूमिका, कमोबेश, समन्वय करने की होनी चाहिए, उसको कम से कम लोगों के सामाजिक व आर्थिक जीवन में हस्तक्षेप करना पड़ता है; उसको स्वभावतः नियामक होना पड़ता है।

नागरिक समाज को अधिक मुखर और असदृश होना पड़ता है। उसे राज्य के साथ और उसका निर्माण करने वाले सभी संघटकों के भीतर निरन्तर व सतत बातचीत जारी रखनी पड़ती है। उसका क्षेत्र स्वतंत्र रूप से और मुक्त रूप से निर्दिष्ट करना पड़ता है, जहाँ युक्तियाँ जनमत और सार्वजनिक संलाप को राज्य–मुक्त बनाती रहती हैं।

उदारवादी–लोकतांत्रिक राज्यों में, राज्य व नागरिक समाज से संबंध रखने वाली शक्तियों की एक सतत अन्तर्क्रीड़ा होती रहती है, हर एक द्वारा दूसरे पर अपनी छाप छोड़े जाते हुए तानाशाह राज्य–व्यवस्थाओं में, राज्य–सत्ता को नागरिक समाज के नियंत्रण हेतु प्रयोग किया जाता है और नागरिक समाज राज्य में एकीकृत हो जाता है : राज्य नागरिक समाज की ही बात करता है। लोकतंत्र अकेले ही राज्य को नागरिक समाज से मिलाता है। राज्य ज़्यादा देर कायम नहीं रह सकता, यदि वह लोकतंत्र से भाराक्रांत न हो; नागरिक समाज का अस्तित्व बना नहीं रह सकता, जब तक कि वह लोकतांत्रिक रूप से संरचित न हो और लोकतांत्रिक रूप से काम न करता हो।

कोई लोकतांत्रिक राज्य बना नहीं रह सकता यदि वह अवरोधक, अवपीड़क, निषेधक, और थोपा हुआ हो; वह नहीं अस्तित्व रख सकता, यदि वह नागरिक समाज को परिपूर्ण व्यवस्था में प्रस्तुत न करे; वह नहीं बना रह सकता, यदि वह लोगों को अधिकारों व स्वतंत्रताओं की गारण्टी न दे। इसी प्रकार, एक लोकतांत्रिक नागरिक समाज कायम नहीं रह सकता यदि वह सार्वजनिक क्षेत्र में हरेक व्यक्ति को काम करने की इजाज़त न दे; वह नहीं बना रह सकता यदि एक–एक नागरिक राज्य पर समान दावा न रखे, यदि हरेक नागरिक को मनुष्य के रूप में सम्मान न मिले।

10-6 lkjk'k

राज्य महज़ हुकूमत नहीं है; यह एक राजनीतिक समुदाय भी है। ग्राम्सी कहते हैं, यह सभ्य समाज का दृश्य राजनीतिक है, जिनकी जिसमें उन गतिविधियों की समग्र समष्टि सन्निहित है जिनकी मदद से एक शासक वर्ग अपना प्रभुत्व कायम रखता है, और इसमें वे तरीके भी शामिल हैं जिनसे वह उनकी रज़ामंदी हासिल करने का इंतज़ाम करता है, जिन पर वह शासन करता है। दूसरे शब्दों में, यह नागरिक समाज में सत्ता के मध्यबिन्दुओं पर आधारित संस्थाओं व प्रथाओं की एक समष्टि है। यह एक सामाजिक संबंध है और मानो, सामाजिक संरचना की विधिबद्ध सत्ता यही है।

सभ्य समाज में मान्यताओं, मूल्यों व संस्थाओं की एक सम्पूर्ण शृंखला होती है, जैसे – राजनीतिक, सामाजिक व नागरिक अधिकार, कानून का शासन, प्रतिनिधि संस्थाएँ, एक सार्वजनिक स्थान तथा सर्वोपरि, संघों का बाहुल्य।

ये दो अवधारणाएँ, राज्य व नागरिक समाज, समय के साथ विकसित हुई हैं और उनके साथ–साथ, उनके अभिलक्षण भी विकसित हुए हैं। दोनों ने एक दूसरे को अनुकूल महत्त्व देते हुए परस्पर संबंध निभाया है। राजनीतिक अर्थव्यवस्था और उदारवाद के उद्‌गमन के साथ ही सभ्य समाज ने एक निश्चित सम्पृक्तार्थ ग्रहण कर लिया, खासकर राज्य के संबंध में।

राज्य और सभ्य समाज एक–दूसरे से गहरे जुड़े हैं। सभ्य समाज के बिना राज्य की कल्पना नहीं की जा सकती, और नागरिक समाज के बारे में राज्य के बिना नहीं सोचा जा सकता है। ये दोनों अखण्ड्य संबंधों में विद्यमान रहते हैं। राज्य, लोकतांत्रिक व्यवस्थाओं में, नागरिक समाज की रक्षा करता है और नागरिक समाज राज्य को मज़बूती प्रदान करता है। तानाशाह शासन–प्रणालियों में, राज्य नागरिक समाज पर नियंत्रण रखता है।

10-7 vH;kl

1. पश्चिम में 'राज्य' शब्द कैसे प्रचलन में आया?
2. राज्य की लाक्षणिक विशेषताओं को संक्षेप में बताएँ।
3. राज्य–संबंधी प्राचीन यूनानी दृष्टिकोण को संक्षिप्ततः बताएँ।
4. मार्क्सवादी लोग राज्य को मध्यवर्ग के सामान्य क्रियाकलापों को नियंत्रित करने वाली समिति क्यों मानते हैं?
5. राज्य की आरम्भिक आधुनिक अभिदृष्टि स्पष्ट करें।
6. नागरिक समाज क्या है?
7. हेगैल के नागरिक समाज–संबंधी दृष्टिकोण को स्पष्ट करें।
8. राज्य व नागरिक समाज के बीच संबंध स्पष्ट करें।
9. लोकतंत्र राज्य व नागरिक समाज के बीच अखण्ड्य संबंध कैसे सुनिश्चित करता है?